अनन्तर/जनसत्ता/२८ जनवरी, २००७

तैस्सितोरी के शहर में

ओम थानवी

बीकानेर मेरे बचपन का शहर है। हालांकि उसे फिर बचपन की आंख से देखना चाहकर भी मुमकिन नहीं। इस बीच जब-जब जाना हुआ, इस बात को तल्खी से महसूस किया है। कभी शहर नया लगता है, कभी लोग, कभी आप खुद। सही बात है कि चीजें बदल जाती हैं। लेकिन क्या हम कम बदलते हैं! बचपन की आंख जैसे भीतर कहीं दुबक जाती है। उसे जगाने में जतन करना पड़ता है। स्मृति को कुरेदना, अपने से निकल कर अपने सामने खड़े होना। मानो एक जिंदगी फिर से जीना।

अपने स्थापत्य की वजह से अलग से पहचानी जा सकने वाली उस इमारत का नाम नागरी मंदिर है। प्रचलित नाम है नागरी भण्डार। हम उसके शताब्दी समारोह के एक आयोजन में शरीक थे। शहर से कुछ दूर स्थित दुलमेरा में निकलने वाले लाल पत्थर से बनी इस भव्य इमारत को शहर के बाशिंदे रोज देखते होंगे। इसलिए कि वह स्टेशन या बाजार को जाने वाली मुख्य सड़क के मोड़ पर है। बीस बरस पहले, जब मैं जयपुर में 'इतवारी पत्रिका' से दैनिक अखबार के बीकानेर संस्करण में आया, इसके ठीक सामने एक 'जय हिंद' रेस्तरां हुआ करता था। उसमें शहर के लेखक-पत्रकार जुटते थे। नागरी भण्डार में साहित्यिक गोष्ठियां होती थीं। राजस्थानी भाषा की अकादमी और उसकी एक पत्रिका का दफ्तर तब वहीं था। बीच के विशाल हॉल में लोग एक ही दिशा में, मगर दो हिस्सों में बैठते थे। बीच में एक छोटा-सा गलियारा सरस्वती की प्रतिमा को नमन करने वालों के लिए छोड़ दिया जाता था। इधर गोष्ठी चलती थी, उधर मंदिर की घंटी लहराती रहती थी। दोनों काम साथ-साथ और सहज गति से चलते जाते थे।

गुरुवार को दृश्य कुछ ऐसा ही था। मेरा मन वर्तमान और अतीत का द्वंद्व पाटने की जद्दोजहद में रत रहा। विद्याधर शास्त्री की याद आई जिनसे यहीं मिला था। नरोत्तमदास स्वामी से उनके घर। कैसे-कैसे धुरंधर भाषा-विज्ञानी और शोधकर्ता शहर में मौजूद थे। फिर डॉ. छगन मोहता जैसे मनीषी। लोकगायिका अल्लाहजिलाई बाई। चित्रकार हिसामुद्दीन उस्ता। साहित्य की अपनी छटा थी। जाने कितने कवि, गजलगो और गीतकार। श्रोताओं की तादाद अब भले घट गई हो, कोई वक्त था जब काव्य-रसिकों के लिए शहर में हर पण्डाल छोटा पड़ता था।

केदारनाथ सिंह नागरी भण्डार के आयोजन में मुख्य अतिथि थे। वे इस बात पर हैरान थे कि काशी में नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना के बाद नागरी के लिए एक बड़ी संस्था धुर रेगिस्तान में स्थापित हुई। भवन के गुम्बद पर करीने से उत्कीर्ण पाणिनी के सूत्रों को वे अचंभे से निहारते रहे। मैंने उन्हें बताया कि नागरी भण्डार की स्थापना के चंद बरसों बाद, १९१३ में, हिंदी बीकानेर की राज्य-भाषा घोषित कर दी गई थी। उन्हें सुनकर अच्छा लगा कि ज्ञान, मान और कुछ खान-पान की रिवायतों को देख लोग शहर को छोटा काशी कहते हैं। अपनी मंद मुस्कान बिखेरते बोले, 'जाहिर है!' यह उनका तकिया-कलाम है।

नागरी भण्डार में केदारजी ने समकालीन साहित्य पर सुंदर व्याख्यान दिया, नंदकिशोर आचार्य के कविता-संग्रह का लोकार्पण किया, हरीश भादानी से गले मिले, क्रांतिधर्मी जे. बगरहट्टा की जीवन-कथा लिखने वाले गिरधारीलाल व्यास से भेंट की और फिर बोले कि शहर में क्या दिखाएंगे? मैंने कहा, मैं तैस्सितोरी के घर जा रहा हूं जहां अब कोई सरकारी महकमा चलता है; तैस्सितोरी के नाम पर कुछ वक्त शहर में बिताने का मन है। ज्यादा काम उन्होंने यहीं किया। यहीं की मिट्टी में सोए हैं। केदारजी ने क्षण भर मेरी तरफ देखा और सहर्ष साथ चल दिए। यह बताते हुए कि डिंगल काव्य-रचना ''वेलि क्रिसन रुकमणी री'' (कृष्ण-रुक्मणी की प्रेम गाथा) कभी उनके पाठ्यक्रम में थी!

लुइजी पिओ तैस्सितोरी उस शख्स का नाम है जो उदिने (इटली) में पैदा हुआ, फ्लोरेंस विश्वविद्यालय के विद्वान पावोलिनी के सान्निध्य में संस्कृत और हिंदी सीखी। १९१० में, जब उम्र के सिर्फ तेईस वसंत देखे थे,

रामचरित मानस पर वाल्मीकि रामायण के प्रभाव का अध्ययन कर पीएच-डी की उपाधि हासिल की। वहीं पर प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन करते हुए उन्होंने राजस्थानी सीखी और मारवाड़ी का अपभ्रंश और गुजराती से संदर्भ जोड़ते हुए व्याकरण तैयार किया। आज उसे भारतीय-आर्यभाषा के ऐतिहासिक व्याकरण की बुनियाद माना जाता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के कहने पर १९५५ में डॉ. नामवर सिंह ने 'पुरानी राजस्थानी' नाम से उसका हिंदी में अनुवाद किया था, जो नागरी प्रचारिणी सभा से छपा।

मशहूर भाषा-विज्ञानी और भारतीय भाषा सर्वेक्षण विभाग के निदेशक जॉर्ज ग्रियर्सन के बुलावे पर तैस्सितोरी अप्रैल, १९१४ में भारत आए। मुंबई बंदरगाह, वहां से कलकत्ता। हालांकि डॉ. ग्रियर्सन से तैस्सितोरी की कभी सीधे मुलाकात नहीं हुई, लेकिन दोनों में पत्रों के जरिए संवाद अंत तक कायम रहा। डॉ. ग्रियर्सन ने उन्हें कलकत्ता एशियाटिक सोसाइटी से राजस्थानी के चारण साहित्य के संग्रह और अध्ययन का काम दिला दिया। इस पारंपरिक साहित्य के जरिए राजपूताने के इतिहास का सर्वेक्षण भी उनके जिम्मे था।

कुछ महीने कलकत्ता रहकर तैस्सितोरी जयपुर होते हुए जोधपुर पहुंचे। वहां उन्होंने अपना काम मनोयोग से किया। शहर भी उन्हें बहुत रास आया। लेकिन बाद में जोधपुर के महाराजा सुमेर सिंह की रहस्यपूर्ण बेरुखी के चलते वे बीकानेर आ गए। उन्होंने उदयपुर महाराणा को एक प्रस्ताव भेजा था। मगर वहां से कोई जवाब आने से पहले बीकानेर के महाराजा गंगासिंह ने उन्हें बुलवा लिया। पहले सिर्फ छह महीने का काम मिला। उन्हें पांडुलिपियों के अध्ययन के साथ बीकानेर के इतिहास के लिए भावी कार्य-योजना तैयार करनी थी। बाद में काम आगे चलता रहा।

जोधपुर और बीकानेर के गांव-गांव अपने सहायक भेज कर, कभी खुद जाकर उन्होंने लोक-साहित्य की लिपिबद्ध प्रतियां जुटाईं। उन्हें सूचीबद्ध किया। डिंगल भाषा-रूप की कई कृतियों को उन्होंने इतिहास ही नहीं, साहित्य की दृष्टि से भी पढ़ा और उनकी टीका की। पृथ्वीराज चौहान की रचना ''वेलि क्रिसन रुकमणी री राजा प्रीथिराज री कही'' के अलावा ''वचनिका राठौड़ रतनसिंहजी महेसदासोत री खिड़िया जगा री कही'' और ''छंद राउ जइतसी रो'' की चर्चा साहित्य और भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में बार-बार होती है। बाद के दो ग्रंथों के केंद्र में युद्ध का वर्णन है।

डॉ तैस्सितोरी दिसंबर १९१५ में बीकानेर आए थे। रियासत ने उन्हें सम्मान दिया। बड़ा बंगला। जरूरी साधन-सुविधाएं। यहां तैस्सितोरी ने पांडुलिपियों की खोज, शोध और इतिहास की पड़ताल के साथ अपने काम में पुरातात्त्विक खोजबीन भी शामिल कर ली। इस बीच, अप्रैल १९१९ में, मां की बीमारी की खबर पाकर वे इटली गए। उनके वहां पहुंचने से पहले मां चल बसीं। तैस्सितोरी भारत लौटे तब समुद्री हवा के थपेड़े झेल नहीं पाए। निमोनिया हुआ और उसी वर्ष २२ नवंबर को बीकानेर की आठ नंबर कोठी में उनका निधन हो गया। उस वक्त वे बत्तीस वर्ष के थे। यह मकान उस संग्रहालय के ठीक सामने है, जिसमें एक पूरा कक्ष तैस्सितोरी के पुरातात्त्विक संग्रह से सज्जित है।

पुरातात्त्विक इतिहास पर डॉ. नयनजोत लाहिड़ी का एक अध्ययन 'फाइंडिंग फॉरगटन सिटीज' (लुप्त नगरों की खोज) पढ़कर मुझे अहसास हुआ कि तैस्सितोरी के पांडुलिपि संग्रहण और भाषा, व्याकरण, साहित्य या इतिहास के संदर्भ में उनके योगदान पर तो विद्वानों का मुनासिब ध्यान गया है; लेकिन उनकी पुरातात्त्विक खोज को ठीक से देखा-परखा नहीं गया। न तैस्सितोरी के जीते-जी, न बाद में।

जब बीकानेर के महाराजा गर्मियों में आबू पर्वत की आरामगाह के लिए कूच करते थे, तैस्सितोरी ऊंट की पीठ पर सवार होकर- उनका दावा था ऊंट पर उनकी यात्राओं का कीर्तिमान कोई पुरातत्त्व खोजी कभी नहीं तोड़ पाएगा- दूर सूखी नदी घग्घर के इलाके में निकले होते थे। एशियाटिक सोसाइटी को भेजे गए ब्योरों के मुताबिक उन्होंने पुरातात्त्विक इतिहास की पड़ताल में कई लंबे दौरे किए। १९१८ में किए गए दो दौरों की अवधि पूरे तीन माह थी। उन्होंने एक साथ सिवाणा, सोठी, बोहर, भादरा, पीलीबंगा, कालीबंगा और रंगमहल की दूरियां नापीं। कालीबंगा और रंगमहल में कई दिन लगाए। खुदाई का जायजा लिया। वहां मिली चीजों और दंतकथाओं का विस्तृत ब्योरा, डॉ. लाहिड़ी के अनुसार, उन रिपोर्टों में सिमटा पड़ा है जो अब तक प्रकाशित नहीं हो सकी हैं। कालीबंगा और रंगमहल की खुदाई ने कालांतर में इन जगहों को दुनिया के नक्शे पर ला खड़ा किया। खुदाई में उन्हें ईंटों वाली थेड़ियां (टीले), अहम मूर्तियां, मुहरें, मृद्‌भाण्ड और शिलालेख मिले।

ऊंची थेड़ियों को देख उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि यहां कभी किसी नदी का प्रवाह रहा होगा।

यह तथ्य अपने आप में कम रोमांचकारी नहीं कि सिंधु घाटी सभ्यता की खोज के घटनाक्रम में मुअनजो-दड़ो से पहले कालीबंगा में तैस्सितोरी का फावड़ा चला। तब तक पुरातात्त्विक संसार केवल हड़प्पा का नाम जानता था। हड़प्पा में भी अलेग्जेंडर कनिंगम को मुहरों और अवशेषों से किसी प्रागितिहास का अहसास नहीं हुआ था। शुरू में उन्होंने हड़प्पा को महज ह्वेन-सांग के दौर का कोई बौद्ध मठ समझा। जबकि, इससे उलट, तैस्सितोरी ने कालीबंगा के कुछ पुरावशेष देखकर साफ लक्ष्य किया कि ये ''प्रागितिहास नहीं तो बहुत पीछे के'' जरूर हैं। ये चीजें थीं नुकीले पत्थर और तीन मुहरें जिनमें दो एकशृंगी वृषभ वाली हैं। एकशृंगी वृषभ की मुहरें आज सिंधु सभ्यता की जानी-मानी चाक्षुष पहचान हैं।

तैस्सितोरी की मुश्किल यह थी कि वे प्रशिक्षित पुरातत्त्वी नहीं थे। इसलिए कालीबंगा की अपनी खोज पर पुरातत्त्व के किसी अधिकारी विद्वान से सलाह लेते हुए झिझके होंगे। लेकिन कालीबंगा की तीन मुहरों को लेकर मन में घुमड़ी शंका पर उन्होंने अपने गुरु समान जॉर्ज ग्रियर्सन से खतो-किताबत की थी, जब वे मां को देखने इटली गए। उन्होंने ग्रियर्सन को एक पत्र में मुहरों की तस्वीर भेजते हुए लिखा, ''मेरा विश्वास है ये प्रागैतिहासिक काल की हैं, नहीं तो आर्येतर तो जरूर।... मैंने इन्हें अब तक किसी को नहीं दिखाया है, सर जॉन मार्शल को भी नहीं। मैं पहले आपकी राय जानना चाहता हूं।'' रहस्यमय पशु-आकृति और अबूझ लिपि को देखकर डॉ. ग्रियर्सन ने उन्हें पुरातत्त्व विशेषज्ञों के नाम मशविरे के लिए सुझाए। भारत लौट कर तैस्सितोरी शायद उन विशेषज्ञों से संपर्क साधते। शायद भारतीय पुरातत्त्व के महानिदेशक जॉन मार्शल से दुबारा मिलते, जो उनके प्रति स्नेहिल और मददगार थे। लेकिन लौटने के बीस रोज बाद तैस्सितोरी दुनिया से कूच कर गए। कालीबंगा की मुहरों में प्रागितिहास साबित करने की हसरत उनके साथ दफ्न हो गई।

यह महत्त्वपूर्ण बात है कि मुअनजो-दड़ो की खुदाई के काम में सक्रिय राखालदास बनर्जी १९२० में बीकानेर आए। उन्होंने दिवंगत तैस्सितोरी को खुदाई में मिली चीजें संग्रहालय में देखीं। यह बोध बनर्जी को बीकानेर में हुआ कि मुअनजो-दड़ो की खुदाई में उन्हें जो ईंटें मिलीं, उनकी कालीबंगा की ईंटों से समानता है। तब तक उन्हें तक उस इलाके में दबी किसी सभ्यता के अस्तित्व का भान नहीं था। मुअनजो-दड़ो के प्रसिद्ध बौद्ध-स्तूप को देखकर वे भी गुप्तकाल से पीछे नहीं सोच पा रहे थे। बाद में उन्हें भी मुअनजो-दड़ो में एकशृंगी वृषभ वाली मुहरें मिलीं, जो तैस्सितोरी को कालीबंगा में चार साल पहले मिल चुकी थीं। उससे अध्ययन की राह बदल गई।

१९२४ में जॉन मार्शल ने दुनिया को भारत की सबसे प्राचीन सभ्यता की आधिकारिक खबर दी।

तैस्सितोरी की झोली में एक महान उपलब्धि आकर भी अज्ञात रह गई।

यह वक्त का खेल है कि सिंधु घाटी सभ्यता की खोज का श्रेय मुअनजो-दड़ो को मिला, कालीबंगा को नहीं। भले पुरातत्त्व में दोनों ठिकाने आज अगल-बगल रखे जाते हों। बहरहाल, बीकानेर संग्रहालय में तैस्सितोरी द्वारा जमा किए गए विभिन्न काल-खंडों के अवशेष उनके काम के परिमाण को जाहिर करने के लिए काफी हैं। कला की कसौटी पर बीकानेर के निकट पल्लू में ढूंढ़ी गई सरस्वती की दो भव्य प्रतिमाएं- दूसरी अब दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में प्रदर्शित है- हर नजरिए से अप्रतिम ठहरेंगी।

कहना न होगा पुरावशेष संग्रह का उनका यह काम पांडुलियों के संग्रह, संपादन और विश्लेषण के मूल काम से हटकर था। वह काम बड़ा साबित हुआ और उसके लिए उन्हें उचित ख्याति मिली। खयाल करें, भाषा-साहित्य और पुरातत्त्व का सारा काम उन्होंने कमोबेश पांच वर्ष में किया। विद्वत्ता के क्षेत्र में इतने थोड़े वक्फे में ऐसा काम किसी दूसरे के लिए शायद ही संभव हो। नामवरजी के शब्दों में: यों तो अल्पायु में मरने वाले प्राय: सब लोगों के बारे में कहा जाता है कि वे जीते रहते तो न जाने क्या करते; लेकिन तैस्सितोरी के बारे में यह कथन जितना सही है, उतना बहुत कम लोगों के बारे में होगा। इतना काम बहुतों के लिए उम्र भर में संभव नहीं होता।

केदारजी को लेकर पहले मैं चर्च के पीछे नाले के पार गया, जहां तैस्सितोरी सोए हैं। यह छोटी-सी कब्रगाह है। एक कब्र पर छाया है। तैस्सितोरी को यहीं दफनाया गया था। कब्रगाह से हम बीकानेर संग्रहालय आए। वहां

से तैस्सितोरी की प्रतिमा पर। बाहर निकल कर तैस्सितोरी पार्क देखा। फिर कोठी नंबर आठ, जहां तैस्सितोरी ने अपना छोटा मगर बड़ा जीवन जिया।

तैस्सितोरी का मकान मैंने बचपन में अपने घर से बाल पुस्तकालय- जो संग्रहालय की इमारत में है- जाते वक्त जाने कितनी बार देखा होगा। इस दफा भीतर गया। यहां बीकानेर संभाग के दो बड़े अधिकारियों के दफ्तर हैं।

नीचे पुलिस महानिरीक्षक बैठते हैं, जहां कभी तैस्सितोरी की बैठक थी। सामने बल खाते हुए एक जीना ऊपर जाता है, जहां तैस्सितोरी के सोने का कमरा था। यहां संभाग आयुक्त का दफ्तर है। यों इमारत में दस-बारह कमरे हैं। कहते हैं तैस्सितोरी के कुछ सहयोगी- पांडुलिपियों की प्रतिलिपि और व्याख्या करने वाले- उनके साथ रहते थे। इमारत मजबूत है, मगर उसका वही हश्र है जैसा किसी भी सरकारी दफ्तर का हो सकता है। दीवारें खस्ताहाल। बाग उजड़ चुका है। जिस जगह को विरासत समझ कर सहेजना चाहिए था, जहां किसी नए निर्माण या रद्दोबदल की मुमानियत होती, मैंने देखा पिछवाड़े ऊपरी मंजिल पर नए शौचालय का निर्माण चल रहा है।

पर्यावरण कार्यकर्ता और पत्रकार शुभू पटवा से मैंने जानना चाहा कि स्थानीय नेताओं या प्रशासन ने इस इमारत को कभी तैस्सितोरी की स्मृति के रूप में सुरक्षित रखने के बारे में विचार क्यों नहीं किया। उन्होंने कहा कि ऐसी समझदारी की उम्मीद नेताओं या अफसरों से करना नादानी होगा। हां, एक अधिकारी ने इमारत में अपनी बचपन की स्मृति को संजो लेने में कोई कसर नहीं रखी। कुछ वर्ष पहले वे यहां संभाग आयुक्त नियुक्त थे। उनका जन्म इसी आठ नंबर कोठी में हुआ था। असल में उनके नाना केएम पणिक्कर महाराजा गंगासिंह के प्रधानमंत्री थे और इस घर में रहते थे। आयुक्त महोदय ने एक रोज अपना दफ्तर इमारत में तब्दील करवा दिया और खुद उस कमरे में बैठने लगे, जहां उनका जन्म हुआ था! मुख्य सचिव होकर वे अब सेवानिवृत्त हो चुके हैं। लेकिन संभाग आयुक्त के दफ्तर को यहां से हटा कर तैस्सितोरी स्मृति, संग्रहालय या शोध केंद्र बनाने का नेक खयाल किसी के दिमाग में नहीं आता।

इसका मतलब यह नहीं कि तैस्सितोरी के प्रति शहर में सबका रवैया उपेक्षा का है। असलियत यह है कि लोगों ने इतालवी विद्वान की स्मृति को दिलों में ऐसे संभाल कर रखा है, मानो वे बीकानेर में जन्मे-पले हों। हर साल उनकी पुण्य तिथि पर लोग उनकी ''समाधि'' पर जमा होते हैं। उन पर बड़े पैमाने पर यहां गोष्ठियां और शोध कार्य हुए हैं।

इसके कई साक्ष्य हैं कि तैस्सितोरी लेखन ही नहीं, मारवाड़ी और हिंदी के उच्चारण तक में निष्णात थे। जैन आचार्य विजयधरम सूरि के शिष्य होकर वे शाकाहारी हो गए थे। जोधपुर पहुंचने के बाद मूंछों और केशों की ढब भी मारवाड़ी हो गई। बीकानेर में ऊंट पर सवार होते तो लू से बचने के लिए साफा भी पहन लेते। ऊपर से उनकी राजस्थानी साहित्य और इतिहास में पैठ। शायद इस सब की वजह से लेखक अगरचंद नाहटा ने उन्हें 'पिछले जन्म का मारवाड़ी' करार दिया था।

तैस्सितोरी की स्मृति बनाए रखने में जिन संस्थाओं ने अनूठा काम किया, उनमें शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट प्रमुख है। इसके उपाध्यक्ष गोपाल जोशी और सचिव मुरारी शर्मा ने मुझे बहुत-सी दुर्लभ सामग्री और तस्वीरें मुहैया करवाईं। व्यक्तियों में धुन धारण कर किसी विद्वान ने नहीं, व्यापारी हजारीमल बांठिया ने काम किया। १९५० में शोध पत्रिका 'राजस्थान भारती' में उन्होंने सबसे पहले तैस्सितोरी के योगदान पर लेख लिखा। इसकी प्रेरणा और संदर्भ सामग्री उन्हें उनके मामा अगरचंद नाहटा ने दी थी। बांठिया बीकानेर के थे, पर व्यवसाय हाथरस में था। उनके उस लेख के बाद देश में कई विद्वानों का ध्यान तैस्सितोरी के काम की तरफ गया। उन्हीं के प्रयत्नों से लगभग लापता कब्र मिली। उस पर पत्थर जड़ा गया, छतरी बनी। १९५६ में तैस्सितोरी की याद में शहर में एक भव्य समारोह हुआ, जिसमें शिरकत करने के लिए कलकत्ता से भाषाविद् सुनीतिकुमार चटर्जी भी आए। बांठिया ने बाद में बीकानेर और कानपुर के तुलसी उपवन में तैस्सितोरी की प्रतिमाएं स्थापित करवाईं। हालांकि दोनों शिल्प के नजरिए से खराब हैं, पर लोगों के कृतज्ञ भाव का अंदाजा ऐसे प्रयत्नों से सहज ही लग सकता है।

तैस्सितोरी की कब्र उनके मुरीदों ने बीकानेर में कैसे ढूंढ़ी, यह वाकया दिलचस्प है। नागरी में तैस्सितोरी का पत्राचार भी। इनका जिक्र अगली दफा।